

## जलवायु परिवर्तन एवं समस्या ग्रस्त क्षेत्रों हेतु जौ: एक बेहतर विकल्प

मधु पटियाल<sup>1\*</sup>, एस के बिश्नोई<sup>2\*</sup>, धर्म पाल<sup>1</sup>, के के प्रामाणिक<sup>1</sup>, ए के शुक्ला<sup>1</sup> एवं अंजना ठाकुर<sup>3</sup>

<sup>1</sup>आई सी ए आर- भारतीय कृषि अनुसंधान संस्थान (क्षेत्रीय केंद्र), शिमला, हिमाचल प्रदेश-

171004

<sup>2</sup>आई सी ए आर-आई डब्लू बी आर, करनाल

<sup>3</sup>चो.स.कु. हिमाचल प्रदेश कृषि विश्व विद्यालय, पालमपुर-176062

पृथ्वी का तापमान परिवर्तनशील है तथा यह प्राकृतिक चक्र के अनुसार बदलता रहता है। जलवायु परिवर्तन के मुख्य कारकों में प्रकृति में होने वाले परिवर्तन तथा मानवीय गतिविधियों से होने वाले परिवर्तन हैं। पानी के घटते स्रोत, कम होती शरद् ऋतु की अवधि, समय से पहले फूलों का खिलना व फसलों का पकना, फसल व्यवस्था में बदलाव तथा फसलों की पैदावार में गिरावट इत्यादि जलवायु परिवर्तन के मुख्य सूचक हैं। आज हरित क्रान्ति के बावजूद किसानों के कृषि पारिस्थितिक समस्याओं का समाधान नहीं किया जा सका है। खाद्य सुरक्षा को बनाये रखने के लिए कृषि में ऐसी नई प्रजातियों के विकास पर बल दिया जा रहा है, जो मौसम के जैविक एवं अजैविक तनावों को सह सकें एवं समस्या ग्रस्त क्षेत्रों में भरपूर उत्पादन दे सकें। इसके अतिरिक्त इस बात पर भी विशेष बल दिया जा रहा है कि पुरानी प्रजातियों में आनुवंशिक विकास करके नई प्रजातियों का विकास हो।

पिछले कुछ दशकों से जलवायु में परिवर्तन देखा गया है, जिसके कारण

बेमौसमी वर्षा या वर्षा का न होना, आर्द्रता का कम या ज्यादा होना, आदि सामान्य हो गया है। यह पिछले कुछ दशकों से जलवायु में होने वाला बदलाव किसानों के लिए चुनौती बन रहे हैं। जहां एक ओर जमीन की उर्वरता कम हो रही है तथा अधिक पैदावार लेने के लिए किसानों को ज्यादा रासायनिक खाद का इस्तेमाल करना पड़ रहा है वहीं दूसरी ओर सिंचाई साधनों के अति दोहन के कारण भू-जलस्तर तेजी से गिर रहा है जिससे सिंचाई महंगी और अनिश्चित हो रही है। ऐसी स्थिति पर विचार कर जौ की खेती को प्रोत्साहन देना उचित प्रतीत होता है।

विश्व कृषि में जौ सबसे पुरानी फसल है जिसका धार्मिक व पर्यावरण की दृष्टि से काफी महत्व है। जौ पर्यावरण व मानव स्वास्थ्य के सुरक्षा की दृष्टि से सिद्ध फसल है। जौ, गेहूँ और चावल के समान एक महत्वपूर्ण फसल है, जो दुनिया भर में विभिन्न वातावरण में लगाई जाती है, और परिणामस्वरूप जलवायु परिवर्तन के लिए इसको एक भावी मॉडल के रूप में इस्तेमाल किया जाता है। पर्यावरण प्रदूषण की स्थिति

में जौ प्रमुख खाद्यान्न फसल है जिसकी खेती अधिकतम बारानी एवं असिंचित क्षेत्रों में की जाती है। जौ मुख्यतः सीमांत भूमियों की फसल है। यह उन क्षेत्रों में उगाई जाती है जहाँ धान देरी से पकती है। इसी कारण से जौ ऊँचे क्षेत्रों तथा ऊँचे शुष्क समशीतोष्ण खण्डों में बारानी परिस्थितियों की मुख्य फसल है। आंकड़ों के अनुसार पूरे भारतवर्ष में जौ का क्षेत्रफल घटता जा रहा है, जो कि इस फसल के नए आयामों से वंचित रहने का संकेत है।

उर्वरक व सिंचाई के सीमित साधनों में जौ की खेती गेहूँ की तुलना में अच्छी उपज देती है। जौ द्वारा फसल विविधीकरण भी जल बचाने की दिशा में एक कारगर कदम हो सकता है। भूमिगत जल पर अधिक निर्भरता के कारण अब उसका खनन होने लगा है और भूमिगत जल के खनन होने के कारण जल की गुणवत्ता खराब हो गई है इससे जल स्रोतों को हानि पहुँच रही है। जल स्तर गिरने के कारण किसानों को अपने कुएं और ट्यूबवेल को बार-बार गहरा करने पर खर्च करना पड़ता है। इसलिए यह अनिवार्य है की हम ऐसी खेती करें जो बारानी दशा में अच्छी संतोषजनक उपज दे सके। जौ की फसल ऐसी बारानी दशा में एक अच्छा स्थान रखती है। अतः बारानी क्षेत्रों में जौ अन्य अनाजों की उपेक्षा सफल फसल है।

गुणवत्ता की दृष्टि से गेहूँ की अपेक्षा जौ हलका धान्य है। मधुमेह के रोगी को जौ का

आटा अधिक अनुकूल रहता है। जौ खाद्यान्न में- बीटा ग्लूकॉन की अधिकता और ग्लूटेन की न्यूनता जहाँ एक ओर मानव रक्त में कोलेस्ट्रॉल स्तर को कम करता है, वही दूसरी ओर सुपाच्यता व शीतलता प्रदान करता है। इसके सेवन से पेट संबंधी गड़बड़ी, गुर्दे में पथरी बनना, आंतों की गड़बड़िया तथा याददाश्त की समस्या दूर होती है। इसके सेवन से शरीर में शक्कर की मात्रा बढ़ती नहीं है। इसमें एंटी कोलेस्ट्रॉल तत्व भी पाया जाता है। जिसकी चरबी बढ़ गयी हो वह अगर गेहूँ और चावल छोड़कर जौ की रोटी एवं बथुए की या मेथी की भाजी तथा साथ में छाछ का सेवन करे तो धीरे-धीरे चरबी की मात्रा कम हो जाती है। जौ मूत्रल (मूत्र लाने वाला) पदार्थ हैं अतः इन्हें खाने से मूत्र खुलकर आता है। अगर ब्लड प्रेशर की शिकायत हो तो जौ को खाना चाहिए। हाल ही में हुए एक अध्ययन में दावा किया गया है कि जौ से ब्लड प्रेशर कंट्रोल होता (जौ का छिलका ब्लड प्रेशर से बहुत ही कारगर तरीके से लड़ता है)। उँचे पर्वतीय क्षेत्रों में लोग जौ को अपने भोजन, पशुओं के लिए चारे तथा स्थानीय मदिरा बनाने के लिए प्रयोग करते हैं। जौ में छिलका युक्त एव नंगी (छिलका) रहित दो तरह की किस्में पाई जाती हैं। हिमाचल प्रदेश के लाहौल-स्पिति, किन्नौर तथा चम्बा के पांगी व भरमौर क्षेत्रों में छिलका रहित जौ की खेती की जाती है

जबकि दूसरे जिलों में जौ की छिलका युक्त किस्में लगाई जाती हैं।

**जौ की कृषि व्यवसाय में उपयोगिता एवं महत्व:**

- खेती में विविधता स्थाई कृषि का एक पहलू है। मोनोकल्चर खेती में एक प्रकार की फसलों को अपनाकर किसानों को आर्थिक नुकसान होने की संभावना बढ़ जाती है। खेत में फसलों की विविधता बहुत अहम है जो जलवायु परिवर्तन के दौरान फसलों में होने वाले नुकसान को कम कर सकती है। जौ फसल विविधता के लिए एक शानदार बहुमुखी अनाज है।
- जौ की खेती करने के लिए अन्य फसलों की अपेक्षा कम खर्च आता है क्योंकि इसमें सिंचाई व उर्वरकों पर लगने वाली लागत बहुत कम है।
- भूमि के प्रत्येक दशा (असिंचित, सिंचित विलम्ब से, समुद्री तटीय क्षेत्रों व क्षारीय लवणीय भूमि) में जौ संतोषजनक उपज देने की क्षमता रखती है।
- सूखाग्रस्त क्षेत्रों, हल्की लवणीय व क्षारीय मृदा तथा कम उपजाऊ भूमि पर भी इसकी खेती संभव है। पर्वतीय क्षेत्र जहाँ 87 प्रतिशत भूमि वर्षा पर आधारित है, में इसकी खेती करना सार्थक है।
- दक्षिणी -पूर्वी एशियाई देशों में बियर तथा अन्य माल्ट पर आधारित पेय की मांग बढ़ती जा रही है, इसलिए माल्ट पर आधारित कारखानों के लिए जौ की

आपूर्ति करने के लिए इसकी खेती करना लाभदायक सिद्ध हो सकता है।

- जौ, गेहूँ की फसल से 10 से 15 दिन पहले पक कर तैयार हो जाती है जिससे भविष्य में अन्य फसल जल्दी लगाई जा सकती है।
  - बीटाग्लूकॉन, ग्लूटेन तत्व की न्यूनता, विलयशील रेशे व विटामिन्स की प्रचुरता के कारण कोलेस्ट्रॉल, रक्तचाप, पेट, पथरी, पेशाब संबंधी रोग, लकवा व याददाशत की कमी में जौ बहुत उपयोगी पाई गई है। इसका प्रयोग आर्थराइटिस (जोड़ों के दर्द) के रोगियों के लिए भी हितकर बताया गया है।
  - पहाड़ी राज्यों के अत्याधिक ऊँचाई वाले क्षेत्रों में सर्दियों के दिनों में पशुओं के लिए हरा चारा उपलब्ध करवाना एक विकट समस्या है। ऐसी परिस्थितियों से निपटने के लिए जौ की खेती करना अत्यंत लाभकारी होगा। इन क्षेत्रों के किसानों को अधिक चारा व दाना देने वाली प्रजातियाँ उपलब्ध कराने के प्रयास किए जाने चाहिए।
  - जौ से बहुत खाद्य व पेय पदार्थ जैसे बालाहार, बारले सीरप, हार्लिक्स, माल्टोवा एवं कई हेल्थ टॉनिक बनाये जा रहे हैं। इसलिए अन्य वाले समय में जौ की मांग में बढ़ोतरी होने की संभावना है।
- जौ में सूखे, लवणता और कवक रोगों के प्रति प्राकृतिक सहनशीलता है, इस प्रकार यह

तनाव विज्ञान अनुसंधान के लिए एक आदर्श पौधा है। जौ का पौधा उपलब्ध मिट्टी के पानी का उपयोग करने से पहले अपना जीवन-चक्र पूरा कर लेता है, यहां तक कि उच्च लवणीय सांद्रता में भी और सबसे लवणीय सहिष्णु अनाज के रूप में परिभाषित किया गया है। भारत में लगभग 2.5 करोड़ हैक्टर भूमि अम्लीय होने के कारण कम उपजाऊ है। सत्तर लाख हैक्टर भूमि क्षारीय लवणीय (ऊसर) है। यदि केवल उत्तर प्रदेश को देखें तो 12.9 लाख हैक्टर भूमि क्षारीय-लवणीय है और राजस्थान में खेती योग्य भूमि का लगभग 15 प्रतिशत क्षेत्र क्षारीय लवणीय मृदाओं से प्रभावित है, जहां किसान ऊसर समझ करके खेती नहीं करते हैं या बिना देख-रेख के कोई फसल बो देते हैं। प्रयोगों द्वारा यह सिद्ध हो चुका है कि गेहूँ या अनाजों की तुलना में जौ बहुत ही लवण सहिष्णु है। जौ सबसे अधिक लवण-सहिष्णु फसलों में से एक है और अक्सर पौधों में लवणता अनुकूलन तंत्र को समझने के लिए एक मॉडल के रूप में उपयोग किया जाता है। लवणता के लिए जौ के भिन्न अनुकूलन जीनोटाइप और विकास चरण होते हैं। लवणता तनाव के तहत अंकुरित होने और जीवित रहने की क्षमता के आधार पर, जौ की प्रजातियां या तो सहिष्णु या संवेदनशील होती हैं।

जलवायु से होने वाले परिवर्तन का सीधा असर फसलों की पैदावार, मृदा पोषक

तत्वों व फसलों की अवधि पर हो रहा है एवं जलवायु परिवर्तन के कारण ही फसलों में खरपतवार, रोगों एवं कीटों का प्रकोप भी बढ़ता जा रहा है। बदलते मौसम ने कृषि वैज्ञानिकों के सामने बहुत चुनौतियां खड़ी कर दी हैं। पौध प्रजनक, एक क्षेत्र विशेष की जलवायु, बिमारियों के प्रकोप व फसल की गुणवत्ता को मद्देनजर रखते हुए किस्मों का विकास करते हैं। लेकिन अब उसको जलवायु में हो रहे परिवर्तन जैसे कि कार्बन डाई-आक्साइड की अधिकता, पानी की उपलब्धता व तापमान में होने वाले उतार-चढ़ाव से झूझना होगा। जंगली किस्मों में बदलती जलवायु से लड़ने के लिए उपयुक्त स्रोत एवं क्षमता होती है इसलिए आधुनिक किस्मों में इन विशेषताओं को स्थानांतरित किया जा सकता है। जंगली जौ आनुवंशिक परिवर्तनशीलता और जैविक और अजैविक तनाव कारकों का सामना करने की बढ़ती क्षमता के लिए संभावित स्रोत हो सकता है और अपने प्राकृतिक क्षेत्र से एकत्र किया जा सकता है।

जलवायु परिवर्तन का गेहूँ एवं जौ की फसलों पर प्रभाव फसलों के घटते हुए क्षेत्रफल के रूप में ही नहीं देखा जाना चाहिए अपितु फसलों का स्थानान्तरण भी इसका मुख्य परिणाम है। जैसे की हिमाचल प्रदेश के निचले क्षेत्रों में गन्ने का क्षेत्रफल लगभग 47 प्रतिशत घट गया है जो कि अब गेहूँ व नगदी फसलों जैसे लहसुन तथा अदरक के



अधीन आ गया है। बदलते जलवायु के चलते अनाज की फसलों का क्षेत्रफल घट गया है जो कि उच्च पर्वतीय क्षेत्रों में फलों द्वारा और मध्यम पर्वतीय क्षेत्रों में बेमौसमी सब्जियों द्वारा अधिग्रहण किया गया है।

**जौ की उत्तम उत्पादन तकनीक के लिए विशेष बिन्दु :**

1. जौ की नई किस्म का चयन करते समय बुवाई, समय से करें। उचित सस्य प्रबन्धन करें।
2. असिंचित दशा में जौ की बुवाई पर्याप्त नमी व अनुकूल वातावरण के आधार पर करना उचित होगा। नमी की कमी होने पर बीज भिगोकर बोयें।

3. खेती में नत्रजन, फास्फोरस व पोटाश अनुशासित मात्रा में प्रयोग करें। नत्रजन खाद की 1/3 मात्रा बुवाई करते समय तथा शेष 2/3 मात्रा पहली सिंचाई यानि एक माह की फसल हो जाने पर डालें। उर्वरक का छिड़काव दोपहर बाद ही करें।

अम्लीय, क्षारीय, लवणीय समस्याग्रस्त क्षेत्रों की गहरी जुताई न करें। इस प्रकार की खेती के लिए एक या दो हल्की जुताई लाभप्रद होती है। पाटा लगाना अत्यन्त आवश्यक है जिससे पर्याप्त नमी बरकरार रहे और लवणों की सान्द्रता के कारण बीजांकुरण में बाधा न पड़े।